INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 03 | January – March 2018

दलित उत्पीड़न एवं मीडिया

Manoj Kumar, Research Scholar,
Dept. of Journalism & Mass Comm., Maharshi Dayanand University, Rohtak

भूमिका : भारतीय समाज सदियों से जाति पर आधारित ऊंच–नीच, के सोपानों में विभक्त रहा है। यहॉ जातिगत विषमता ही आर्थिक विषमता का मुख्य कारण रही है। भारत के संविधान में भारत का एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासन की स्वतन्त्रता तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करने का संकल्प किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 'सामाजिक न्याय के साथ विकास' को राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य मानते हुए इस दिशा में कई उपाय प्रारम्भ किए गए। लेकिन जाति की जकड़बंदी इतनी व्यापक और गहरी निकली कि ऊंची और नीची जाति का परम्परागत भेदभाव अभी भी न केवल बना हुआ हे, बल्कि कई मायनों में अधिक हुआ है। यद्यपि लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बहुस्तरीय दबावों के चलते भेदभाव के स्वरूप और उसके प्रकट व्यवहार में पहले जैसी उग्रता अब नहीं है।

आर्थिक विषमताएं जाति के साथ जुड़ी हैं। ऊंची जाति के लोग चूंकि शुरु से ही अधिक पढ़े–लिखे है, सत्ता में उनकी भागीदारी रही है तथा संसाधनों पर उनका अधिकार रहा है, इसलिए लोकतांत्रिक आयोजनों से उपलब्ध अवसरों का सर्वाधिक लाभ भी उन्हें ही मिला[1]

दलित शब्द का अर्थः–

'दलित' का शाब्दिक अर्थ 'दबाया' या कुचला हुआ है। दलित शब्द को परिभाषित करते हुए कुछ विद्वानों ने इसे एक वर्गीय शब्द बतलाया है और इसके अंतर्गत न सिर्फ अछूतों को ही अपितु अभावग्रस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी वर्गों व जातियों को जिनकी आर्थिक स्थिति खराब हो और जो विभिन्न प्रकार से अभावों में जीता है, सम्मिलित किया है। किंतु वास्तव में 'दलित' से अभिप्राय उस व्यक्ति या सामुदाय से है जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक अर्थात सभी क्षेत्रों में उपेक्षित और दबा हुआ है। केशव मेश्राम के अनुसार, ''हजारों वर्षों से जिन लोगों पर अन्याय हुआ ऐसे अछूतों को 'दलित' कहना चाहिए।''

'दलित' शब्द का चलन बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक में हुआ। पिछड़ा वर्ग आयोग रिपोर्ट के अनुसार इस शब्द का पहली बार प्रयोग 1919 ई. में हुआ। मांटेग्यू–चैम्सफोर्ड सुधार अधिनियम द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर दलित वर्ग के लिए अनेक सरकारी निकायों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया और इसी के अनुरुप 1919 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और बहिष्कृत जातियों के लिए 'दलित' शब्द मान्य हो गया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 1932 के पूना पैक्ट के बाद अछूतों के लिए 'डिप्रेस्ड क्लास' शब्द का इस्तेमाल किया। गांधी जी ने अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द देकर भले ही उच्च भाव देने का कार्य किया हो किंतु भारतीय इतिहास के 'हरिजन' देवदासियों की संतानों के लिए इस्तेमाल किया जाता था और ऐसा नही था कि गांधी जी भारतीय इतिहास के अपरिचित रहे हों। गांधी जी द्वारा दलितों के लिए 'हरिजन' शब्द नाम दिए जाने का विरोध हुआ और भारत सरकार के गृह मंत्रालय के दिनांक 10 फरवरी 1982 के पत्र के क्रम में भारत सरकार कल्याण मंत्रालय ओ.एम.न. 12025/14/90–एस.सी.डी (आर.एल.सेल) दिनांक 16 अगस्त 1990 के आदेश द्वारा 'हरिजन' शब्द के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाया गया और इसकी जगह अनुसूचित जाति तथा अनूसूचित जनजाति का प्रयोग होने लगा।[2]

दलित उत्पीड़न एवं उनका शोषण :

अधिकतर अनुसूचित जातियॉ खेतिहर और मेहनतकश मजदूर हैं। वे हमले, हत्या बलात्कार, निर्दयी और अमानवीय व्यवहार के शिकार होते हैं। इन अमानवीय व्यवहारों के प्रति तनिक भी प्रतिक्रिया करने पर अनुसूचित जातियों को सामाजिक बहिष्कार, सार्वजनिक सुविधाओं और जमींदारों के खेतों पर मजदूरी वचन का सामना करन पड़ा है। इस तरह की घटनाऍ बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश तमिलनाडु और राजस्थान आदि प्रदेशों में होती रही हैं। मई 1977 में बेलची में 9 दलितों हरिजनों को जीवित जला दिया गया। बिहार में नृशंसता की अन्य घटनाऍ कर्गधर, पथड़ा, छोंदनों, गोपालपुर और धर्मपुर में हुई हैं। वे लोग इसलिए ही नही मारे गए थे कि वे दलित थे, बल्कि इस तथ्य के कारण भी कि वे धनी व प्रभु जमीदारों के खेतों पर कृषक श्रमिकों और बटाईदारी के रुप में कार्य करते थे। इन घटनाओं में निम्नतम मजूदरी, बटाईदारों के दखल अधिकार और सार्वजनिक सुख–सुविधाओं के उपयोग के प्रश्न भी उलझ हुए थे। चूँकि इस तरह के अत्याचार गैर दलित सर्वहारा वर्ग पर नही किए जाते, सवर्णो द्वारा लितों पर किए गए इन अत्याचारों में जातियता का एकतत्व अवश्य सम्मिलित है। कभी–कभी इज्जत और उच्च–निम्न जाति संघर्ष के मुद्दे 'अछुतो' के अमानवीकरण में स्पष्ट तौर पर दिखाई देते है।

जुलाई 1978 में महारष्ट्र में मराठेवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम परिवर्तित कर डाक्टर बाबा साहेब अम्बेडकर विश्वविद्यालय रखने के प्रश्न कोलेकर उपद्रव हुए। दलित और गैर दलित विद्यार्थी सक्रियतावादियों के बीच संघर्ष उभरकर आया। दलितों के विरुद्ध आन्दोलन में हिंसा भड़की, जिसमें लोगों की हत्य, दलित स्त्रियों के साथ छोड़खानी और बलात्कार दलितों के घरों ओर झोपड़ियों को जलाना, उनकी बस्तियों को लूटना, घरों और गॉवों से निष्कासन, पशुओं को मारना और पीने के पानी तथा रोजगार से वंचित करने आदि की घटनाऍ हुई। उच्च जाति के प्रभु लोगो ने सोचा कि दलितों को मराठावाडा विशविद्यिालय का ''एक दलित नेता'' के नाम पर कैसे रखने दिया जा सकता है। उन्होंने इसे अपनी शान के विरुद्ध समझा और सोचा कि इससे तो इस क्षेत्र में उनकी इज्जत घट जाएगी।[3]

दलित उत्पीड़न एवं मीडिया की भूमिका :

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक दृष्टि से दलित समाज के सबसे निचले पायदान पर है। गरीबी–रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली 48 प्रतिशत जनता में 70 प्रतिशत आबादी दलितों की है। देश की 16 प्रतिशत भाग ही है। दलितों पर अत्यचारों के स्थिति यह है कि देश में हर एक घंटे में दो दलितों को हिंसक हमलों का शिकार होना पड़ता है, प्रतिदिन तीन दलित औरतों के साथ बलात्कार होता, प्रतिदिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है और दो दलित घरों में आग लगा दी जाती है। प्रतिदिन छुआछुत और मारपीट की असंख्या घटनाएं होती है, भारत सरकार ने स्वीकार किया है कि देश में 6.76 लाख लोग अपने जीवन निर्वाह के लिए मानवीय मैला उठाते है। प्रश्न यह है कि लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ होने का दावा करने वाले मीडिया में इन मुद्दों पर कोई बात क्यों नहीं होती है।

सूचनाओं के प्रकाशन–प्रसारण में ग्रहण और त्याग का स्वरुप मीडिया के सरोकारों को सामने लाता है। हरियाणा के गोहाना में 31 अगस्त 2005 के दलितों के घरों पर हमला कर लूटमार की गई और घरों में आग लगा दी गई। इस घटना पर कुछ समाजिक संगठनो की ओर से 'दलित मुक्ति संगठन, करनाल ने एक अध्ययन रिपोर्ट प्रकाशित की है। रिपोर्ट में मीडिया की भूमिका से सम्बन्धित खण्ड में बताया गया है कि ''31अगस्त, 2005 हमले के दिन मीडिया दो हिस्सों में साफ बंटी नजर आई। एनडीटीवी इंडिया ने गोहाना की घटना का जिस तरह से पहले दिन प्रसारण किया। वह भारतीय पत्रकारिता की विरासत का वास्तविक हिस्सा है। इसके चलते पूरा देश वस्तुस्थिति से अवगत हो सका। इसने इस खबर को समाचार–पत्रों के स्थानीय संस्करणों के बाजार से बाहर निकलाने में दबावकारी

भूमिका अदा की। दूसरी तरफ जी टी.वी. के चैनल जी न्यूज और विदेशी रूपर्ट मुर्डोक के स्टार न्यूज ने दूसरे दिन सम्पन्न जाटों के नेतृत्व वाली खाप पंचायत का सीधा प्रसारण किया। पंचायत में खुलेआम वाल्मिकी मोहल्ले को चंबल की घाटी बताया जा रहा था।दलितों के नामों का मखौल उडाया जा रहा था। वस्तुतः ऐसे अनगिनत उदाहरण है जब मीडिया ने निर्लज्जतापूर्वक दलितों के स्वर को दबाया है, सच को झूठ और झूठ को सच बनाकर पेश किया है।[4]

निष्कर्षः–

यह सच है कि भिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के बावजूद मीडिया में सभी लोग न तो दलित विरोधी है और न ही हर रोज दलितों के खिलाफ कोई अभियान मीडिया में चलाया जाता है। लेकिन सूचनाओं के चयन में दलितों की उपेक्षा एक तथ्य है। समाज के उच्च जाति–समूहों के साथ दलित–हितों के टकराव के समय मीडिया दलितों का साथ कभी नहीं देता है। वह दलितों के विरुद्ध सवर्णों के अनुचित क्रोध की अपनी पाठक संख्या या टी.आर.पी बढ़ाने के लिए भुनान लगता है। आरक्षण और दलितों पर अत्याचार के मामले में मीडिया यदि जिम्मेदारी से कार्य करे और तथ्यों को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करे तो कई दुर्घटनाओं को टाला जा सकता है।

संदर्भ ग्रथ सूची

1प परिहार कालूराम (2006) ''मीडिया के सामाजिक सरोकार अनामिका पबलिशर्स नई दिल्ली पृ. 83.

2प भारती डॉ. रामबिलास (2011) ''बीसवीं सदी में दलित समाज'' अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली पृ.सं.20

3प शर्मा के.एल. (2006) 'भारतीय सामाजिक सरचंना एवं परिवर्तन रावत पब्लिकेशन जवाहर नगर, जयपुर पृ.स. 166,

4प परिहार कालुराम (2006) 'मीडिया के सामाजिक सरोकार' अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली पृ.सृ 86.